सुमित्रानंदन पंत के मानववाद के सिद्धांत का एक विवेचन

डॉ. आर.पी. वर्मा,
असि. प्रो. एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय गोसाईखेड़ा,
जनपद–उन्नाव, उ.प्र.

आज संसार में मानव में वर्गो, जातियों तथा राष्ट्रों का तांता लगा रखा है, जिससे दोनों ने अपने को अलग–अलग वर्गो तथा जातियों में विभक्त कर रखा है। इसके परिणामस्वरूप मानवता खंडित हो गई है और सामाजिक तथा वैयक्तिक दुःखों की उत्पत्ति हुई है।

मानव कृत वर्गों में पंत जी ने चार मुख्य वर्गों पर विचार किया है, जिनमें विभाजित रहकर मानव आज दुःखी है। उसके दुःख का कारण उसके वर्ग के वैचारिक जगत् की संकीर्णता है। ये चार वर्ग हैं – (क) बुद्धि प्राण, (ख) धर्म प्राण, (ग) नव शिक्षित और (घ) वैज्ञानिक। इनके विषय में पंत जी का कथन है –

''तर्कों वादों सिद्धान्तों से बुद्धि प्राण जन पीड़ित,

नीति रीति शाखा पंथों में धर्मप्राण अति सीमित,

द्रव्य मान पद के दर्जन में रत स्त्री प्रिय नव शिक्षित

महामृत्यु के पूजन में वैज्ञानिक, राज्य नियोजित।''

बुद्धि प्राण वर्ग में आने वाला मानव तर्क, सिद्धांत तथा वाद आदि की वार्ता में ही लगा रहता है, धर्मप्राण व्यक्ति रीति, शाखा तथा पंथ के अनुसरण में ही पड़ा रहता है, आधुनिक नव शिक्षिति व्यक्ति द्रव्य, मान आदि को ही अधिक महत्व देना अपना कर्तव्य समझता है और वैज्ञानित मृत्यु पूजा के उपक्रम में लगा रहता है। पंतजी कर्त्तव्य समझना है और वैज्ञानित मृत्यु पूजा के उपक्रम में लगा रहता है। पंतजी इनमें से किसी भी वर्ग के मानव को सुखी नहीं बताते हैं। उनकी कथन है कि अपूर्ण विचारधारा के कारण इन वर्गों में विभक्त होने के कारण मानव को वैचारिक घरातल की व्यापकता नहीं मिल पाती है और वह दुःखी बना रहता है।

जाति पाति के बंधन में होने से मानवता आज खोई–खोई सी है। उसे अपनी स्वतंत्र सत्त बनाने में बाधा सी हो रही है, कवि पंत की ऐसी मान्यता है। आज मानव ने अपने को केवल जाति के नाते ही नहीं, राष्ट्र के नाते भी भेद भाव से ग्रस्त कर रखा है। वह देशों में ही नहीं, प्रदेशों में भी विभक्त है। ऐसी स्थिति में मानवता का दुःखी होना सहत संभव है। इस संबंध में पंत जी का कथन है –

''खोई सी है मानवता, खोई वसुधाप्रतिबंधित,

जाति पंति है, रुढि रीति है, देश प्रदेश विभाजि।''

मानव समाज में मानवता की भावना को लेकर जागृति लाने के लिए पंतजी ने काव्य के सक्ष्म मानकर उसके द्वारा मानवता की पुकार की है। कवि किसी एक ही देश का नहीं होता है, वह तो समस्त जगत् की निधि है। उसके द्वारा प्रस्तुत विचार किसी एक देश के मानव के लिए नहीं होते हैं, उनमें विश्व मानवता के निमित हितकारी विषय वस्तु होती हे। इसी वैचारिक धरातल में अपने को रखकर पंत जी ने संसार के समस्त

मानव वर्ग को संबोधित कर उसके द्वारा मानवता की प्रतिष्ठा हेतु मानव चैतन्य को जाग्रत करने के लिए अपने काव्यमय स्वर व्यक्त किये हैं। वे मानवता को विश्वव्यापक रूप देना चाहते हैं।

कवि पंत की कामना है कि मानवता के परिसर से संकीर्णता की मावना को दूर करने के लिए सर्वप्रथम मानवता का अनुरागी होना पड़ेगा। उसे स्वार्थ भावना का सर्वथा परित्याग कर समस्त धरणी में एक मानवता की स्थापना करनी होगी।

''सर्वोपरि मानव संस्कृत वन, मानवता के प्रति हो प्रेरित,

द्रव्य मान पद यश कुटुम्ब कुल, वर्ग राष्ट्र में रहें न सीमित।

एक निखिल धरणी का जीवन, एक मनुजता का संघर्षण।''

पंत द्वारा सद्प्रवृत्तियों के कवि पंत मानव मंगल के लिए सद्प्रवृत्तियों का विकास आवश्यक मानते हैं। मानव में पंतजी की विकासोन्मुखी प्रवृत्ति होती है तथा जिससे जीवन में सुख संचार की आशा होती है, वहीं सत्प्रवृत्ति है। ऐसी प्रत्प्रवृत्तियों के विकसत होने पर ही मानव मन सदाशय संकल्पों के लिए योग्य बन जाता है। सत्प्रवृत्ति की मानव को सत्य, प्रिय और शांति तथा कर्मठ संकल्प लेने के लिए प्रेरित करती है।

जन–भू के जीवन को मानवीय बनाने के लिए पंतजी दया, क्षमा, प्रेम आदि सत्प्रवृत्तियों को मानव में विकसित करने की कामना करते हैं। सत्प्रवृत्तियों के विकसित होने पर मानव देवोत्तर हो जायेगा, पंत जी को ऐसा विश्वास है। सत्प्रवृत्तियों को उन्होनें मानव का आंतरिक ऐश्वर्य माना है। इस अंतर ऐश्वर्य से ही मंडित होकर मानव देव तुल्य बन जाता है।

सत्प्रवृत्तियों के विकसित होने पर मानव हृदय की निष्ठुरता स्वतः समाप्त हो जाता है औश्र वह मानवीय बन जाता है। ऐसा हृदय ही मानव जीवन में सौख्य का संचार कर सकता हे। उसमें ही मानव को देव का सा रूप देने का सामर्थ्य होता है। रूणा, जो एक सत्प्रवृत्ति है, मानव के निर्मम हृदय को मानव कल्याण के लिए उर्वर बना सकती है। इस संबंध में पंत जी की कामना है –

''करुणा धारा से मानव का

भू निर्मम अन्तर हो उर्वर।''

कवि पंत की धारणा है कि आज मानव को अपने में नवीनता का समाहार करन है। आज उसे अभिनव रूप के लिए, त्याग, पत, संयम आदि सत्प्रवृत्तियों को अपने हृदय में विकसित करना है। इतना ही नहीं, समता की भावना, प्रेम, शील, न्याय तथा क्षेत्र की भावना को भी सत्प्रवृत्ति–जनक मानकर हृदय तल में प्रतिष्ठित करना होगा।

मानववादी कवि पंत मानव के हित में प्रेममय स्वर्ग की बात करते हैं। समाज के रूप में वे एक ऐसा परिवर्तन चाहते हैं, जिससे वह मानव के लिए स्वर्ग–सा सुखद हो सके। सामाजिक जीवन को नारकीय बनाने वाली परिस्थितियों को ठीक करने के लिए कवि ने अपने काव्य प्रेरणात्मक शब्दों का संगुम्फन किया है। नारकीय जीवन क्या मानव के लिए रखा गया है ? यह एक ऐसा प्रश्न है, जिस पर प्रत्येक प्रबुद्ध मानव गांभीर्य के साथ चिंतनरत रहता है। मानव जैसे विकसित प्राणी के लिए संसार में किसी बात की कीमी है। वह अपने सौख्य के लिए क्या नहीं कर सकता है। वह तो सर्वथा समर्थ है। फिर वह नारकीय जीवन को क्यों पसंद करें। उसे तो ऐसा जीवन अभीप्सित है, जो स्वर्ग की तरफ समस्त देवी संपदाओं से युक्त हो। प्रेममय स्वर्ग, उसके हित में, पंतजी के द्वारा परिकल्पित है।

कविवर पंत समाज की संपूर्ण सत्ता को सर्विक आभूषणों से मंडित करना चाहते हैं। समाज की नर सत्ता, नारी सत्ता एवं अन्य सत्ताओं को कवि ने इसी आशय से प्रेम का पाठ पढ़ाया है। प्रेम की महत् शक्ति की सक्रियता पर उन्हें पूर्ण विश्वास है। उससे युक्त मानव सत्ता की मनोकामना की पूर्ति के लिए स्वर्गिक उपादान कल्प वृक्ष तथा कामधेनु आदि स्वतः धरती पर झुक जाते हैं। इस प्रकार एक प्रेममय स्वर्ग की रचना मानव जगत में हो जाती है।

पंतजी की मामना है क स्वर्गिक विभा से मानव जीवन प्रकाशित हो, उससे उसका दुःखोत्पादक अंधकार दूर हो। उनका कथन है –

"जीवन के मत की कबरी हो स्वर्ग विभा से भास्वर।"

कवि का यह भी विश्वास है कि प्रेममय स्वर्ग के रूप में परिणति होने पर मानव समाज को भू देव के रूप में प्रतिष्ठित करेगा। उसमें देवत्व के आने पर संसार में सुख तथा मांगल्य का प्रबर्द्धन करेगा। उसमें देवत्व के आने पर संसार में सुख तथा मांगल्य का प्रबवर्द्धन होगा।

कविवर पंत ने मानव को आत्मिक विकास के लिए प्रेरित किया है। मानव का आत्मिक विकास तभी संभव होगा, जबकि वह आत्मोन्मुख हो तथा अंतर्मुखी जीवन का विकास करने के लिए ऊर्ध्व संचरणशील रहे। आत्मोन्मुख होते हुए दृश्य–जगत् से कुछ परे अदृश्य वस्तु की प्राप्ति के लिए की जाने वाली साधना ही अंतर्मुखी साधना कहलाती है। मानव को अपने जीवन के स्थल, भौतिक तथा समतल मानों के अतिरिक्त सूक्ष्म, आध्यात्मिक तथा ऊर्ध्व मानों की अवश्यकता भी होती हे। ऐहिक सुखानुभूमि के साथ ही आतत्मिक सुखानुभूति भी उसके हितार्थ आवश्यक है। इन सबके लिए उसे अंतर्मुखी साधना का साधन पड़ता है। अंतर्मुखी साधना के द्वारा ही मानव ऊर्ध्व संचरणील होते हुए आत्मिक आनंद की अनुभूति करता है जिसे आज के समाज की सबसे बड़ीआवश्यकता माना जाएगा।

अंतर्मुखी साध्ना के संबंध में पंतजी का दृष्टिकोश व्यापक है। उन्होनें बहिर्मुखी तथा अंतर्मुखी साधना के क्षेत्र में हीनता तथा उच्चता का संकेत नहीं दिया है। उननिषदों के अनुरूप में इन दिनों को समान मानते हैं। वे इन दोनों साधनाओं में से एक को अधिक तथा दूसरी को कम महत्व देने के पक्ष में नहीं है। इसके विपरीत वे इन दोनों में समन्वय करते हुए नवीनता की सृष्टि करते हैं।

पंतजी की मान्यता है कि जीवन में अविरल विकास के लिए मानव को समदिक् संचरण अर्थात् बाह्म जगत में समस्त आंदोलनों के संचालन के साथ ही ऊर्ध्व संचरण अर्थात् अंतर्मुखी साधना में भी निरस्त होना पड़ेगा। उसे इन दोनों में अर्थात् बहिरंतर मं संयोजन कर अपने जीवन में सफल उड़ान लेनी होगी।

कविवर तंत के काव्य का युग–विश्वमानवता एवं लोक मानवता का युग है। इस युग मं किसी देश विशेष के मानव के विषय में चिंतन करते हुए उसके हित की बात की जा रही है। आज साधरण मानव अर्थात् लोक मानव से लेकी विश्व मानव तक कवि के समक्ष उपस्थित है। लोक–मानवता तथा विश्व मानवता की विशेषताओं का निर्धारण करना कवि का धर्म हो गया है।

पंत–युग में मानव समाज, प्रकृति तथा संसार के साथ अखंड संबंध है। वह वैयक्तिक जीवन को भी समाज तथा विश्व के परिप्रेक्ष्य में व्यतीत करना चाहता है। कहने का आशय यह है कि वह विश्व–मानव बनना चाहता है। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि आज एक देश के मानव की समस्या से दूसरे देश का मानव सुपरिचित हो गया है तथा उन दोनों में एक दूसरे की संस्कृतियों को शुद्धवशेष ग्रहण करने की अभिक्षमता उत्पन्न हो गई है। अतः वे

विश्व–मानव बनने के लिए सर्वथा योग्य हो गए हैं।

जहां तक लोक–मानवता का प्रश्न है, उसे हम मानव के संबंध में विचारणीय समझेंगे, जो श्रमिक, कृषक तथा दलित वर्ग का प्रतिनिधि है। पंतजी सदृश संवेदनशील व्यक्ति इस लोक मानवता से भली भांति परिचित है। लोक मानव की समस्याओं पर विचार करना आज के विकासकामी मानव का कर्त्तव्य हो गया है। उसे छोड़कर मानव समाज के हित में जो भी कार्य किया जाएगा, वह निष्फल होगा।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कविवर पंत का युग मानव को विश्व के व्यापक धरातल में प्रतिष्ठित करते हुए उसको उसकी समस्त अकृत्रिमता तथा लोक निष्ठा के साथ निर्विशेष रूप से समझने का युग है।

वि पंत ने सारे संसार को समक्ष रखते हुए मानव समाज की समस्याओं पर विचार करना चाहा है। उन्हें मानव के सौभाग्य के लिए समाज को परिवतन की दिशा बताना रूचिकर प्रतीत होता है। इस हेतु उन्होंने अपनी साहित्य साधना के मध्य युग से समस्त मानव समाज का पथ निर्देशन करना प्ररंभ किया। संसार के परिवर्तन के पथान्वेषण के प्रयत्न में वह समस्त मानवता के भाग्य पर विचार करने लगे।

पंतजी ने देखा कि संसार भक्षी शत्रुत्व तथा द्वेष ने विश्व के समस्त मानव समाज को पीड़ित कर रखा है। मानव एवं उसकी मानवता की रक्षा के लिए संससार से शत्रुतता एवं द्वेष की भावना का निष्कासन अत्यंत आवश्यक है इसका कवि को अनुभव हुआ। विश्वयुद्धों को भयंकर परिणाम को कवि ज्ञान क्षेत्र में भली भांति अपना स्थान बनाए हुए थे, जिनसे उनका हृदय पीड़ा का अनुभव करता रहा। इस सारी कटुता से मुक्ति पाने के लिए विश्मानवता की प्रतिष्ठता को पंत जी ने युगीन आवश्यकता माना और एतदर्थ अपने काव्य के द्वारा मानव का उद्‌बोधन किया।

मानवता का मूल सिद्धांत है– अनेकता में एकता का ज्ञान। इस सिद्धांत की स्थापना है विश्व की प्रतीयमान अनेकता मिथ्या है। उस अनेकता की प्रतीति वमें संगंथित एकता ही मूल सत्य और मानवीय सत्य है। इस आधार पर पंत जी विश्व मानवता का विचार हमारे समक्ष इस प्रकार रखते हैं –

"क्यों न एक हो मानव मानव सभी परस्पर

मानवता निर्माण करें जग में लोकोत्तर।"

कविवर पंत पूर्व और पश्चिम की विचारधाराओं में समन्वय स्थापित करने के पक्ष में हैं। पूर्वी देशों की आध्यात्मिक तथा पश्चिमी देशों की भौतिकता से संबद्ध विचारों में समन्वय करके ही आधुनिक मानव के योग्य जीवन का आधार भूमि प्रस्तुत की जा सकती है। इन दोनों में से किसी भी एक विचारधारा का आतिशय्य मानव के हित में नहीं रहेगा, ऐसी पंतजी की मान्यता है।

हमारे युग का सबसे बड़ा दुर्भाग्य है–अंतः संश्लेषण तथा बहि–सन्निधान की कमी। हमारा युग–मानव अभी अपने आध्यात्मिक, मानसिक तथा भौतिक संचय को परस्पर संयोजित नहीं कर पाया है। भौतिक वैभव तथा आध्यात्मिक संपदा में संयोजन न होने के कारण वह अपने निश्चित लक्ष्य की ओर निर्बाध नहीं पढ़ पा रहा है। इसी कारण आज मानव–चेतना भी विश्व–संस्कृति की ओर मानव का निर्देशन नहीं कर पा रही है। विश्व–संस्कृति की भावभूमि में मानसिक, आध्यात्मिक तथा भौतिक सम्पदाओं का संतुलन रहता है, जिसमें पहुंचने के लिये वही मानव समर्थ है, जिसके व्यक्तित्व में भौतिक उपादानों और आध्यात्मिक संपदाओं में संयोजन करने की क्षमता हो तथा जिसने इस दशा में प्रयास किया हो और सफलता प्राप्त की हो।

आज भौतिकता और आध्यात्मिकता में संयोजन का अभाव हमें खटक रहा है। उचित संयोजन के अभाव में मानव के योग्य

विश्व–संस्कृति का निर्माण नहीं हो पा रहा है। मानव पर आज बाह्य परिस्थितियां बुरी तरह हावी हैं, जिससे उसका अंतर्जीवन मूर्च्छित हो गया है। मानव पर बाह्य परिस्थितियों का हावी होने का कारण भौतिकता और आध्यात्मिकता में संयोजन का न होना है।

आज समाज के समस्त मानव–समाज को नाश के स्थान पर निर्माण का, विषमता के स्थान पर समता का, अनेक्य के स्थान पर ऐक्य का तथा घृणा के स्थान पर प्रेम का संदेश देना मानव–धर्म है। इसके लिये उन समस्त असामानाओं का निराकरण करना होगा, जिसे कारण पूर्व के मानव को पश्चिम के मानव के साथ मिलने में बाधा होती है। इनमें मुख्य असमानता भौतिकता तथा आध्यात्मिक के क्षेत्र में अतिवाद को लेकर है।

कवि पंत के मानववाद में समस्त संसार के मानव को वैचारिक धरातल में ग्रहण किया गया है। पूर्व का मानव अपनी विशेषता के द्वारा तथा पश्चिम का मानव अपनी नवीनता के द्वारा मानव के लिये सृदृढ़ आधार–भूमि का निर्माण कर सकेगा, कवि का विश्वास है। पूर्व और पश्चिम दोनों में अपनी–अपनी विशेषताएं है, पहला अध्यात्मिक के क्षेत्र में आगे है तो दूसरा बहिर्विधान के क्षेत्र में। दोनों विशेषताओं के के सम्यक संयोजन पर मानव–समाज अत्यंत सुख का अनुभव कर सकेगा, ऐसा विश्वास किया जाता है।

पश्चिम के देशों को मानव–समाज के सौख्य के लिये पूर्व की ओर तथा पूर्व के देशों को जीवन–सौष्ठव के लिये पश्चिम की ओर दृष्टि ले जाकर हित–संपदा को ग्रहण करना चाहिए। पश्चिम को पूर्व, विशेषकर भारत जो अंतर्मन तथा अंतर्जगत का सिद्ध वैज्ञानिक है, मानव तथा विश्व के अंतर्विधान में अंतर्दृष्टि देगा और पूर्व को पश्चिम जीवन के दिक्–प्रसारित बहिर्विधान का वैभव सौष्ठव प्रदान करेगा। पूर्व अंतर्विधान का धनी है और पश्चिम बहिर्विधान का। दोनों के सम्यक आदान–प्रदान से मानव के लिये जीवन सहज संभव हो जाएगा, पंतजी की ऐसी मान्यता है। अपनी मानववाद के लिये कवि ने इस तथ्य को आधारशिला का रूप दिया है।

संस्कृति शब्द का प्रयोग पंत–काव्य में व्यापक अर्थ में हुआ है। पंतजी उसे एक मानवीय पदार्थ मानते हैं, जो जीवन के स्थल तथा सूक्ष्य दोनों धरातलों को स्वीकार करता है। संस्कृति का मानव के हृदय से घनिष्ठ संबंध है और वह मानव को अपनी मानवता की व्यापक धरातल देने के लिये प्रेरित करती है। पंतजी की काव्य–वस्तु इस ओर संकेत करती है।

आज मानवता के मानदंड का निर्धारण समस्त संसार के औसत मानव को लेकर किया जाना है, तभी विश्व–ऐक्य संभाव्य है। इस हेतु मानव–संस्कृति के क्षेत्र को व्यापक बनना होगा जिससे व्यापक सांस्कृतिक समन्वय किया जा सके। अतः हमें संस्कृतिक को लेकर किसी वर्ग विशेष के संदर्भ में न देखकर समस्त मानवता के परिप्रेक्ष्य में देखना होगा। संस्कृति को मात्र वर्गवाद की दृष्टि से देखना एवं बाह्य परिस्थितियों पर अवलंबित अति–विधान मानना केवल वादग्रस्त बुद्धि का दुराग्रह है। सांस्कृति आयाम की व्यापक के लिये हमें वर्ग–वाद के फेर में नहीं पड़ना चाहिए, वरन् समस्त मानवता को दृष्टिकोण रखना चाहिए। आधुनिक मानव–समाज के संस्कृतीकरण के संबंध में कवि पंत के ऐसे विचार है।

पंतजी की कामना है कि मानव का हृदय इतना विस्तृत हो कि वह संसार की समस्त संस्कृतियों के सौष्ठव को सुगमता से ग्रहण कर ले। उसके ऐसा करने पर ही नवीन मानवता की स्थापना होगी, जिससे भू–जीवन विकासमान होगा। इस संबंध में कवि का कथन है –

"मानव अन्तर हो भू विस्तृत, नव मानवता में भव विकसित।"

भू–विस्तृत मानव–हृदय में ही दो विरोधी संस्कृतियों के समन्वय के लिये सक्रिय रहने की शक्ति होगी, यह निर्विवाद तथ्य है।

मानव के देवत्व को प्राप्त करने के विषय में कवि पंत का दृष्टिकोण

कविवर पंत समस्त विश्व के मानव–समाज में एकता स्थापित करना चाहते हैं। उन्हें मानव–कृत विभेद निर्मूल प्रतीक होते हैं। प्राकृतिक सभी मानव एक समान हैं, उनमें किसी प्रकार का विभेदक तत्व नहीं है। यदि हमें उनमें किसी प्रकार के भेदभाव की प्रतीति होती है, तो वह सर्वथा कृत्रिम है और मानव–कृत है।

पंतजी संसार के समस्त मानवों को एक ही मानव–ईश्वर के विविध बिंबित मुख मानते हैं। वे चाहते हैं कि मानव मनमानी करके समाज में विभिन्नता लाने की कोशिश न करे। उनका कथन है –

"मानव एं, विविध मुख बिम्बित,
धरती एक, दशों दिशि खण्डित
मनुज ऐक्य वैचित्रृय विनिर्मित,
जन न करें मनमानी।"

कवि को दुःख है कि मानव ने स्वयं विभेदात्मक स्थिति बनाकर अपने विकास में रोड़ा अटका रखा है। भेदभाव के अंधकार में वह अपनी वास्तविक स्थिति को नहीं समझ पा रहा है। इस दशा में एकता के आनयन के लिये पंतजी प्रकाश से प्रार्थना करते हैं–

"दिशि पल के भेद विभेदों को तुम डुबा एकता में,
आओ।"

कवि की अभिलाषा है कि प्रकाश मानव–कृत भेदभाव को डुबाकर एकता को अस्तित्व में ले आए और वह एकता की भावना मानवता का श्रृगांर बनकर जन–जन के मन में बस जाए।

पंतजी ने अपने काव्य में एकता और प्रेम को बहुत महत्व दिया है। जिसके मूल में एकता, सहजता और प्रेम का अभाव है उसे पंत अपनाने में असमर्थ है। अतः उन्हें मानव–समाज में भेदभाव अस्वास्थ्यकर लगता है।

कवि पंत ने अपने काव्य में मानव को देवत्व से पूर्ण मानने की दिशा में विचार किया है। नव युग का मानव उनके स्वप्नों को मानव है, जो दैवी गुणों से विभूषित होगा तथा धरती में नई संस्कृति के सर्वथा योग्य रहेगा। उसे 'भव मानव' या 'भदेव' आदि नामों से भी पुकारा जा सकेगा। पंतजी के विचारानुसार यह मनुष्य समस्त मानव–संस्कृति की निधियों में जो भी सर्वोत्तम है, उस सबको ग्रहण करेगा, पश्चिमी विज्ञान एवं संस्कृति के उच्च आध्यात्कि सार–तत्व से अपने को अलंकृत करेगा। इस प्रकार आधुनिकतम जीवन–संदर्भों में वह सब प्रकार से परिपूर्ण मानव होगा।

पंतजी का विश्वास है कि मानव आदर्श जीवन तभी जी सकता है, जबकि उसमें देवत्व का संचार हो। इसके लिये मानव को अपने व्यक्तियों में देव–वृत्तियों को जागरण कर संसारिक विप्लव तथा संघर्ष को दूर करना होगा। उसे अपने अंतस् में दैवी भावनाओं के सौंदर्य रूप में प्रतिष्ठित करना होगा। मानव के आंतरिक विकास के साथ उसमें देवत्व के ग्रथित हो जाने पर जगत् की अनेक समस्याएं स्वतः दूर हो जाएंगी और विश्व–व्यापक समता का आविर्भाव हो जाएगा। इस संबंध में पंतजी की कामना है –

"फिर श्रद्धा विश्वास प्रेम से अन्तर हो अन्तःस्मित,
संयम तप की सुन्दरता से जग जीवन शतदल
दिक् प्रहसित।
व्यक्ति विश्व में व्यापक सकता हो जन भीतर से
स्थापित

मानव के देवत्व से ग्रथित जन समाज जीवन को निर्मित।"

मानव को देव बनने के लिये अपने आत्मिक ऐश्वर्य को श्रम तथा तपस्य के बल पर जाग्रत करना है। उसे अपने दैन्य–विदीर्ण जीवन को फिर से महिमान्वित बनाने के लिये भव–वैभव व दैवी संपदा से युक्त होना पड़ेगा।

मानव को दानवी वृत्तियों का विनाश कर प्रकृति से सार–तत्त्व ग्रहण करते हुये अपने जीवन को अभिन्न रूप देना चाहिए। उसे अपने देवत्व के लिये आकाश से शांन्ति, सूर्य से कान्ति, पृथ्वी से विभव एवं वायु से जल की शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। प्रकति के उपादान उसे देवत्व की ओर सरलता से पहुंचा सकते हैं। आज उनके अनेक गुणों तथा क्रिया–शक्ति को लेकर मानव को अपने देवत्व की प्रसन्नता में धरा–धाम में उत्सव रचना है। पंतजी मानव से कहते हैं –

"सुमनों से स्मिति, विहगों से स्वर
शशि से छवि, मधु से यौवन वर,
सुन्दरता, आनन्द, प्रेम का
भू पर विचार, करो नव उत्सव।"

कविवर पंत की विचारधारा है कि विधाता ने जगत् के विकास के लिये देव और दनुज को समशक्ति दी है। परंतु दुःख है कि दनुज अपनी दानवी वृत्ति के कारण जगत् का विकास तो दूर रहा, उसका अहित करता रहता है। जगत् के विकास को ध्यान में रखते हुये यह मानव पर निर्भर है कि वह देव बने या दानव। पंतजी का मन्तव्य है कि मानव को अपने व्यक्तित्व में देवों के प्रतिनिधि–ज्योति, प्रीति, ताप, शांति, श्रेय, धृति शील और न्याय–भावना का समावेश करना चाहिए, तभी मानव–जगत् के कल्याणार्थ उसके देवत्व संभव होगा।

पंतजी इस धरा को ही स्वर्ग बनाने के पक्ष में है। उनके विचार में मानव, जो धरती का जीव है, एक देवता है। उनका कथन है–

"न्योछावर स्वर्ग इसी भू पर,
देवता यही मानव शोभन।"

यदि मानव दैवी संपदाओं को संचित करते हुए भी देवता को कोटि में नहीं आता है, तो पंत जी उसे मानव मानने के पक्ष में नहीं है।

"न्योछावर स्वर्ग इसी भू पर,
देवता यही मानव शोभन।"

यदि मानव दैवी संपदाओं को संचित करते हुये भी देवता को कोटि में नहीं आता है, तो पंत जी उसे मानव मानने के पक्ष में नहीं है।

"वह मानव क्या,
जो करे न अमरों संग विचरण।"

पंत का मानववाद–एक स्वदेशी अनुकरण

कविवर पंत के मानववाद का सिद्धान्त भारतीय जीवन–दर्शन की पीठिका में संस्थित है। भारतीय अद्वेतवाद के सिद्धान्त ने ही इसे अंकुरित करने में सहाय्य दिया है। पंतजी को भारत की औपनिषदिक दृष्टि की हितैषणा पर गर्व है। उसके आधार पर चलने में मानव–जगत् का शिवत्व स्थायी रह सकेगा, इस पर उन्हें विश्वास है। मनुष्य का जीवन तभी जाकर आदर्श बनेगा जब वह प्राचीन भारतीय नीति–नियमों का पालन करेगा।

यद्यपि पंत जी ने अपने में पश्चात्य एवं प्राच्य विचारों का सुंदर समन्वय किया है, फिर भी उन्होंने प्राच्य विचारानुकूल अध्याय का ही अधिक पक्ष लिया है। उनके उत्तरवर्ती काव्य में जिस आध्यात्मिकता के दर्शन होते हैं, वह भारत वर्ष की निजी वस्तु है। समस्त संसार में विविध–दृष्टीय भेदभाव को तिरोहित करते हुये पंत–काव्य में

मानव–ऐक्य एवं विश्व–ऐक्य के लिये जो विचार तथा भाव प्रस्तुत किये गए हैं, उनमें अद्वैतवाद के स्वदेशी सिद्धांत का अनुकरण हुआ है।

यह भारत की विशेषता है कि उसने मानव को देव तुल्य माना है। उसे मानव के देवत्व पर पूर्ण आस्था है। उसी की तरह प्रत्येक मानववादी व्यक्ति मानव को समस्त दैवी वृत्तियों से युक्त पाकर समस्त जगत् का कल्याण चाहता है।

यह भारत वर्ष ही है, जिसने सबसे पहले संसार में विश्व–बंधुत्व, विश्व–प्रेम, 'विश्व–ऐक्य' 'विश्व–शांति,' तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सूत्रों का प्रचार किया है। पंतजी ने सब सामाजिक सूत्रों से प्रेरित होकर अपने मानववाद के सिद्धांत को पुष्ट किया है। अतः उनके मानववाद को स्वदेशी अनुकरण मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

संदर्भ

- ❖ स्वर्ण किरण : इन्द्र धनुष : जीवन निर्माण
- ❖ स्वर्ण किरण : स्वर्णोदय : जीवन–सौंदर्य,
- ❖ उत्तरा : युग दान,
- ❖ स्वर्ण किरण : इन्द्र धनुष
- ❖ सुमित्रा नंदन पंत तथा आधुनिक हिंदी कविता में परंपरा और नवीनता–ई चेलिशेव
- ❖ युग वाणी : दो लड़के
- ❖ उत्तरा – प्रस्तावना
- ❖ वाणी : अर्थ सृष्टि,
- ❖ युग वाणी : प्रकाश
- ❖ सुमित्रा नंदन पंत : जीवन और साहित्य ?
- ❖ स्वर्ण किरण : रजजतापत : आत्म निर्माण
- ❖ युग वाणी : भव मानव
- ❖ पल्लिविनी : मानव स्तवे
- ❖ युग पथ : वह मानव क्या
- ❖ हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
- ❖ पंत के काव्य में उपादान – डॉ. आर.पी. वर्मा
- ❖ हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास – रामस्वरूप चतुर्वेदी
- ❖ हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास – बच्चन सिंह
- ❖ समुत्रितानंदन पन्त तथा आधुनिक हिन्दी कविता में परम्परा और नवीनता – ई–चेलिशेव
- ❖ हिन्दी के प्रमुख आधुनिक कवि – डॉ. आर.पी. वर्मा।

Copyright © 2017, Dr. R.P.Verma. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.